संपादकीय...

कहां का बदला किससे

श्रीलंका में पिछले दिनों हुए सीरियल ब्लास्ट की जवाबदेही लेते हुए इस्लामिक स्टेट (आईएस) के प्रमुख अबू-बकर-अल-बगदादी का जो विडियो जारी किया गया है, उससे कई नए सवाल खड़े हो गए हैं। इस 18 मिनट के विडियो में बगदादी को श्रीलंका धमाकों की तारीफ करते हुए और इन्हें सीरिया में उसके बागूज ठिकाने की हार का बदला बताते हुए दिखाया गया है। बगदादी का यह विडियो करीब पांच साल के अंतर पर जारी हुआ है। इससे पहले 2014 में उसका विडियो जारी किया गया था, जिसमें उसे इराकी शहर मोसुल में खुद को खलीफा घोषित करते दिखाया गया था। मगर उसके बाद आईएस के गढ़ एक-एक कर ढहते गए और खुद बगदादी के भी बुरी तरह घायल होने की खबरें आईं। अनधिकृत रूप से यह भी कहा जाने लगा था कि उसकी मौत हो चुकी है। हालांकि ताजा विडियो से यह नहीं पता चलता कि इसे कहां और कब फिल्माया गया, लेकिन इससे बगदादी की मौत की खबरों पर सवालिया निशान तो लग ही गया है। निश्चित रूप से विडियो जारी करने के पीछे आईएस का उद्देश्य दुनिया भर में फैले अपने समर्थकों तक यह संदेश पहुंचाना है कि उसका ढांचा अभी पूरी तरह खत्म नहीं हुआ है। व्यवहार में इसका मतलब यही हो सकता है कि आतंकी हमलों के खतरे को लेकर दुनिया को अपनी सतर्कता और ज्यादा बढ़ानी होगी। मगर बात सिर्फ आतंकी घटनाओं की नहीं है। विडियो में श्रीलंका की मर्माहत कर देने वाली घटना को सीरिया में मिली हार का बदला बताने वालों की विकृत सोच का अंदाजा लगाया जा सकता है। इस्लाम के 14 सौ वर्षों के इतिहास में इसकी ऐसी विकृत व्याख्या शायद ही कभी सामने आई हो। 'इस्लाम बनाम बाकी दुनिया' का यह सतत संदेश संसार भर के मुसलमानों को कितनी खतरनाक स्थिति में डाल रहा है, इसकी जरा भी परवाह इस्लाम के इन कथित खैरख्वाहों में नहीं दिखाई देती। हद यह कि इस्लाम के उद्धार का दावा करने वाली यह सोच सभी मुसलमानों को अपने दायरे में शुमार नहीं करती। अहमदिया, शिया और न जाने कितने मुस्लिम पंथ ऐसे हैं, जिन्हें यह संगठन गैर-इस्लामी करार दे चुका है। इन तमाम पंथों के लोग भी इसके निशाने पर हैं। इस तथाकथित जिहाद ने मुस्लिम समाज को दो पाटों के बीच कुछ इस तरह फंसा दिया है कि उनके बीच पिसना ही उसकी नियति बनती जा रही है। साफ है कि दुनिया के लिए तो यह एक बड़ा खतरा है ही, लेकिन मुसलमानों के लिए यह और भी बड़ा खतरा है। आतंकी घटनाओं पर लगाम लगाने का काम सुरक्षा एजेंसियां कर लेंगी, मगर इस सोच से समाज को खुद निपटना होगा। इंसानियत में यकीन रखने वाले जो भी लोग हैं, वे इस्लामी दायरे के अंदर हों या बाहर, सबकी साझा चुनौती यही है कि आईएस की सोच का दायरा न बढ़ने दें।

सत्ता के खेल में लोकतंत्र से खिलवाड़

राजकुमार सिंह

"लोकतंत्र की परिभाषा क्या है? यह सवाल कई पाठकों को अटपटा भी लग सकता है, पर देश में लोकतंत्र की दशा-दिशा पर गंभीर सार्थक चर्चा के लिए यह जरूरी है। लोकतंत्र की संक्षिप्त प्रचलित परिभाषा है : जनता द्वारा, जनता के लिए, जनता का शासन। अब जरा अपने देश के लोकतंत्र को इस कसौटी पर कसिए। चुनाव प्रक्रिया को लोकतंत्र की प्राणवायु कहा जाता है। यह गलत भी नहीं है। चुनाव प्रक्रिया के माध्यम से ही मतदाता जनादेश देता है और अपनी आकांक्षाओं की अभिव्यक्ति भी करता है।"

सात दशक पहले आजाद हुए भारत में सत्रहवीं लोकसभा के चुनाव चल रहे हैं। ऐसे में स्वाभाविक सवाल है कि पिछले सोलह लोकसभा चुनावों में लोकतंत्र कितना स्वस्थ-परिपक्व हुआ है और वह प्रचलित परिभाषा पर कितना खरा उतरता है? भारतीय लोकतंत्र के इस सफर को कोई नकारात्मक सोच वाला ही पूरी तरह नकार सकता है। भारतीय चुनाव प्रणाली की विश्वव्यापी साख और उसमें मतदाताओं की व्यापक भागीदारी भी सकारात्मक संकेत ही देती है, लेकिन क्या इतने भर से लोकतंत्र अपनी परिभाषा और उससे जुड़ी जन आकांक्षाओं पर खरा उतर सकता है? कटु सत्य यही है कि हमारी लोकतांत्रिक प्रणाली में जनता की भूमिका महज मतदान तक सीमित रह गयी है या कर दी गयी है। सच्चे लोकतंत्र का तो तकाजा है कि प्रत्याशी चयन में भी जन आकांक्षाओं का ध्यान रखा जाये या कह सकते हैं कि जनता के बीच बेहतर छवि वाला लोकप्रिय प्रत्याशी ही चुना जाये, लेकिन हो इसके उलट रहा है। बेशक प्रत्याशी चयन का एक आधार उसकी राजनीतिक दल विशेष के प्रति निष्ठा भी हो सकती है, लेकिन लगता नहीं कि किसी भी दल या नेता के लिए इस शब्द का कोई अर्थ भी रह गया है। आजादी के बाद कई दशक तक प्रत्याशी चयन की यही प्रक्रिया रही भी कि जिला इकाई तीन नामों का पैनल भेजती थी, फिर प्रदेश इकाई उस पर विचार कर निर्णय लेती थी। मामला अगर लोकसभा चुनाव का हो तो अंतिम फैसला केंद्रीय आलाकमान लेता था, मगर अपवादस्वरूप ही पैनल से बाहर के किसी नाम पर मुहर लगायी गयी हो। राजनीतिक दल दावा कर सकते हैं कि प्रत्याशी चयन की अब भी यही प्रक्रिया है, पर यह दावा दलों और नेताओं की लोकतंत्र में आस्था के दावे की तरह ही छलावे के अलावा कुछ नहीं। कोई बतायेगा कि गोरखपुर से रविकिशन, आजमगढ़ से निरहुआ, गुरदासपुर से अजय सिंह देओल उर्फ सन्नी देओल, उत्तरपश्चिमी दिल्ली से हंसराज हंस, रोहतक से अरविंद शर्मा, दक्षिण दिल्ली से बिजेंद्र सिंह, मुंबई से उर्मिला मातोंडकर, लखनऊ से पूनम सिन्हा और वाराणसी से तेजबहादुर यादव का नाम किस पैनल में कब और किस आधार पर आ गया? गोरखपुर वह लोकसभा संसदीय क्षेत्र है, जिसका प्रतिनिधित्व योगी आदित्यनाथ उत्तर प्रदेश का मुख्यमंत्री बनने तक करते रहे। उनसे पहले उनके गुरु महंत अवैद्यनाथ गोरखपुर का प्रतिनिधित्व करते थे। सत्रहवीं लोकसभा के चुनाव में गोरखपुर का प्रतिनिधित्व करने के लिए भाजपा आलाकमान ने रविकिशन को चुना है, जिनकी कुल जमा पहचान भोजपुरी फिल्मों के हीरो की है, जिसे कुछ हिंदी फिल्मों में भी छोटे-मोटे रोल मिलते रहे। रविकिशन की अगर कोई राजनीतिक विचारधारा या दल-नेता विशेष के प्रति निष्ठा है भी तो वह भाजपा आलाकमान ही जानता होगा। निरहुआ भी भोजपुरी सिनेमा के लोकप्रिय गायक-हीरो हैं। उनकी भी राजनीतिक विचाराधारा और दल-नेता विशेष के प्रति निष्ठा खोज का विषय है। सन्नी देओल के पिता धर्मेंद्र अटलबिहारी वाजपेयी के प्रधानमंत्रित्वकाल में बीकानेर से भाजपा सांसद रह चुके हैं। धर्मेंद्र की दूसरी पत्नी हेमामालिनी लगातार दूसरी बार भाजपा टिकट पर मथुरा से लोकसभा चुनाव लड़ रही हैं, पर सन्नी की राजनीतिक विचारधारा क्या है? नामांकन के बाद खुद सन्नी ने कहा कि उन्हें राजनीति का पता नहीं, पर वह देशभक्त हैं। बेशक उनकी देशभक्ति पर शक नहीं किया जा सकता, पर यह बात तो हर भारतीय पर लागू होती है। फिर गुरदासपुर से सन्नी ही क्यों, कविता खन्ना या स्वर्ण सलारिया क्यों नहीं? इसलिए कि गुरदासपुर से कई बार भाजपा सांसद रहे विनोद खन्ना के निधन के बाद हुए उपचुनाव में कांग्रेस के सुनील जाखड़ ने भारी अंतर से यह सीट जीत ली थी, और इस चुनाव में उसे वापस पाने का स्टारडम के अलावा कोई रास्ता भाजपा को नहीं सूझा। वैसे पड़ोसी राजस्थान में विधानसभा चुनाव में सत्ता गंवा चुकी भाजपा को सन्नी देओल की स्टार अपील से वहां भी कुछ चुनावी लाभ की आस है। हंसराज हंस लोकप्रिय सूफी गायक हैं। पंजाब से कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़कर हार चुके हैं। उनकी राजनीतिक विचारधारा और दलीय निष्ठा, (अगर कभी रही है तो) कब बदल कर कांग्रेसी से भाजपाई हो गयी, कोई नहीं जानता। अब उनके समधी दलेर मेहंदी भी भाजपा में शामिल हो गये हैं। बेशक वह लोकप्रिय पंजाबी गायक हैं, पर उनके विरुद्ध अवैध रूप से लोगों को विदेश भेजने यानी कबूतरबाजी का मुकदमा भी चल रहा है। बिजेंद्र सिंह भारत का नाम रोशन करने वाले मुक्केबाज रहे हैं। उसी के बूते उन्हें हरियाणा पुलिस में डीएसपी की नौकरी मिली थी, जिससे इस्तीफा देकर वह अंतिम क्षणों में दक्षिण दिल्ली से कांग्रेस के उम्मीदवार बन गये। यानी जिस दिल्ली में कांग्रेस लगातार तीन कार्यकाल तक सत्ता में रही, वहां लोकसभा प्रत्याशी बनने लायक कोई नेता-कार्यकर्ता नहीं था?

अरविंद शर्मा हरियाणा की राजनीति में अनजान नाम नहीं है। वह एक बार सोनीपत से निर्दलीय और दो बार करनाल से कांग्रेस के टिकट पर सांसद रह चुके हैं। ऐन चुनाव से पहले भाजपा का दामन थामा तो अटकलें करनाल से ही चुनाव लड़ाने की थीं, पर भाजपा ने पुराने निष्ठावान संजय भाटिया पर ही दांव लगाना पसंद किया। तब चर्चा चली कि अरविंद वापस कांग्रेसी बन सकते हैं या फिर निर्दलीय ही चुनाव लड़ सकते हैं, लेकिन किंतु-परंतु करते हुए अंतिम क्षणों में अरविंद शर्मा को रोहतक से चुनाव मैदान में उतार दिया। क्या रोहतक में भाजपा के पास कोई निष्ठावान कार्यकर्ता-नेता नहीं था, जिसे चुनाव लड़वाया जा सके? उर्मिला मातोंडकर बॉलीवुड की चर्चित अभिनेत्री रही हैं, लेकिन उनकी राजनीतिक सोच या जुड़ाव की चर्चा कभी नहीं हुई। अचानक ही कांग्रेस ने उन्हें लोकसभा उम्मीदवार बना दिया। इसी तरह कांग्रेस ने कभी लोकप्रिय अभिनेता गोविंदा पर भी दांव लगाया था। गोविंदा जीते भी, लेकिन अंततः क्या हुआ? गोविंदा को फिल्मों में ही लौटना पड़ा।

नेताओं की धींगामुश्ती में घुसपैठ

उत्तर प्रदेश में इस चुनावी मौसम में गजब की राजनीतिक चेतना का संचार हो गया है। सांडों ने ट्रैफिक के बीच सड़कों पर रोड शो करने की आदत छोड़ राजनीतिक रैलियों में घुसपैठ करना प्रारम्भ कर दिया है। उन्हें नेताओं में अपना प्रतिबिंब दिखलाई देने लगा है। अभी यह तय नहीं हो पाया है कि सांड सत्ता विरोधी हैं अथवा समर्थक। वे तो समान रूप से सभी दलों की सभाओं में हुड़दंग मचा रहे हैं। विपक्षी दल सांडों को सत्ताधारी दल का एजेंट बतला रहे हैं। उनका कहना है कि विपक्ष की आवाज को सांडों तले रौंदा जा रहा है। बहरहाल सांडों का यह राजनीति प्रेम शोध का विषय है। नेताओं के भाषणों ने सांडों में राजनीतिक समझ पैदा कर दी है। जब बाहुबली नेता बन सकते हैं तो सांडों के साथ ऐसा भेदभाव क्यों? वैसे संविधान ने सभी को अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रदान की है। जब नेता मनचाहे बयान और गालियां दे सकते हैं तो प्रजातन्त्र में उपेक्षित सांड क्यों नहीं अपना सांडपना दिखला सकते? आखिर उन्हें भी अभिव्यक्ति का अधिकार है। जब नेता सांडपना कर सकते हैं तो सांड क्यों नहीं नेतागिरी कर सकते? अब समय आ गया है कि सांड भी अपने प्रजातांत्रिक कर्तव्यों का निर्वहन करते हुए राजनीति में प्रवेश करें। आखिर जनता बदलाव चाहती है। जब महागठबंधन में कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जुड़ सकता है तो सांड के साथ ऐसा भेदभाव क्यों? पशुओं के प्रति ऐसी घोर संवेदनहीनता स्वस्थ प्रजातन्त्र के लिए खतरा है। वैसे प्रजातन्त्र और सांडतंत्र में कोई मूलभूत अंतर शेष नहीं रहा है। नेता जब जनता के सपनों को रौंद सकते हैं तो सांड रैलियों को क्यों नहीं रौंद सकते? इस चुनाव में मुद्दों का बड़ा टोटा है। नेताओं के बयान ही मुद्दे बन रहे हैं। अब सांडों ने मुद्दाविहीन राजनीति को ज्वलंत मुद्दा दे दिया है। शायद सांड इसलिए नाराज हैं कि उनकी जाति के किसी भी सदस्य को किसी भी दल ने टिकट नहीं दिया है। अब सांड तो दलबदल कर चुनाव नहीं लड़ सकते। उनमें नेताओं जितनी नैतिकता की गिरावट नहीं हुई है। आखिर पशु जो ठहरे। वो क्या जाने इनसानी फितरत। नेतागण जब अपने ही खेत की बाड़ तोड़ने में जुटे हुए हैं तो सांड रैलियों के बेरिकेड क्यों नहीं तोड़ सकते। सांडों के सींग तो दिखलाई देते हैं किन्तु नेताओं के सींग अदृश्य होते हैं। जब उनका मन होता है वो व्यवस्था के सीने में इन नुकीले सींगों को घुसा देते हैं। जब नेताओं पर कोई अंकुश नहीं लगाया जाता है तो सांडों के सींगों पर बंदिश लगाने की साजिश क्यों रची जा रही है। यदि सांड अपनी उपस्थिति के माध्यम से लोकतन्त्र को मजबूत करना चाहते हैं तो इसमें क्यों आपत्ति होनी चाहिए।

नई समझ का सम्मान

इस बार नैशनल फिल्म अवॉर्ड्स की घोषणा होते ही हिंदी सिनेमा का सर शान से ऊंचा हो गया। यह शान 100 करोड़ की कमाई का टैग लगाने वाली नहीं, जेनुइन सिनेमा की पहचान के सम्मान की है। यह उन लोगों के लिए एक करारा जवाब है जो किसी कलात्मक माध्यम को महज पैसों तक सीमित कर देते हैं। ऐसे फिल्मकारों को दर्शक की दरअसल कोई परवाह होती ही नहीं, वे सिर्फ मुनाफा कमाना चाहते हैं। बॉलिवुड का ऐसा सिनेमा अब पिछड़ रहा है। नए विचार के साथ इस वक्त का नया सिनेमा दस्तक दे चुका है। इस बार के अवॉर्ड्स ने इस बदलाव को रेखांकित किया है। पान सिंह तोमर, कहानी, गैंग्स ऑफ वसेपुर जैसी फिल्में बाजारू एंटरटेनमेंट वाली फिल्में नहीं हैं। च्यानसिंह तोमरज के लिए बेस्ट डायरेक्शन का अवार्ड तिग्मांशु धूलिया को मिलना उल्लेखनीय है। उन्होंने फिल्म की कहानी को इस तरीके से परदे पर पेश किया कि उसकी बात और गहराई से सामने आई। इस बार पुरस्कृत फिल्मों की एक विशेषता यह भी है कि दर्शक सिनेमा हाल से बाहर निकलते ही इन्हें भूल नहीं जाता। फिल्म उसके साथ दिमाग में चलने लगती है। बेस्ट ऐक्टर का अवार्ड पाने वाले उम्रदराज विक्रम गोखले और यंग इरफान खान अलग ही स्कूल के हैं। ऐक्टिंग उनके शरीर की उछ्लकूद में नहीं, उनके जेस्चर्स में है। वे अपने चेहरे और आंखों से बात करते हैं। बॉलिवुड का बाजार एक समय यह समझ रहा था कि इरफान खान तो सिवाय विलेन के और कुछ बन ही नहीं सकता। अब यह धारणा बदलेगी। इस बार पॉप्युलर फिल्मों की कैटेगरी में हिंदी की जिस चविकी डोनरज ने मलयालम की च्उस्ताद होटलज के साथ पुरस्कार पाया है, उसे भी महज पॉप्युलर सिनेमा के खाने में रखा जाना ठीक नहीं है। बेस्ट ओरिजनल स्क्रीन प्ले के लिए च्कहानीज को और एडप्टेड स्क्रीन प्ले के लिए च्ओ माई गॉडज को अवॉर्ड मिलना इस बात का सबूत है कि निर्णायकों की नजर बाजार से अधिक रचनात्मकता पर रही है। यह नयापन कहीं से उड़कर नहीं चला आया। लंबे समय से शायद बॉलिवुड यह भूलता आ रहा था कि फिल्म सामाज को प्रभावित करने का सबसे बड़ा जरिया है। च्दर्शक यही चाहता हैज की धुन में हमारे ज्यादातर फिल्मकार अपने मन की चीजें दर्शकों पर थोपकर पैसा कमाने में लगे थे। पिछले कुछ बरसों में फिल्मकारों, निर्देशकों और अभिनेताओं की नई खेप ने बाजार और दर्शकों को एकसाथ साधने की कला अर्जित कर ली है। ऐसे में एक समझ भरा सिनेमा आकार ले रहा है। यह उस रचनात्मक समझ का सम्मान है जो तकनीकी दृष्टि से तो समृद्ध है ही, गढ़े हुए फॉर्म्युलों से भी फिल्मों को बाहर निकाल रही है।

किसान की कसक

क्षमा शर्मा

बौद्धिक संपदा के अंतर्राष्ट्रीय कानून का डर दिखाकर बहुराष्ट्रीय कंपनी पेप्सिको ने गुजरात के आलू किसानों पर भारी-भरकम दावा ठोककर अदालत के चक्कर काटने पर मजबूर कर दिया है। किसानों में इससे बेचैनी है। तकरीबन 193 किसान नेताओं, नागरिक प्रतिनिधियों और कार्यकर्ताओं के एक समूह ने केंद्र व राज्य सरकार से किसानों के समर्थन में हस्तक्षेप करने और दावों को तुरंत वापस करवाने की मांग की है। हालांकि, गुजरात सरकार ने कहा है कि वह किसानों के साथ खड़ी है और कंपनी से कहेगी कि वह इन मुकदमों को वापस ले और इसकी पुनरावृत्ति न करे।

दरअसल, कंपनी की तरफ से दावा किया गया है कि उसके लोकप्रिय चिप्स लेज के उत्पादन के लिये प्रयुक्त किये जाने वाले एफसी-5 किस्म के आलू से जुड़े ?कॉपीराइट कानूनों का किसानों ने उल्लंघन किया है। अहमदाबाद की एक वाणिज्यिक अदालत में चार आलू उत्पादकों के खिलाफ एक-एक करोड़ के दावे ठोके गये हैं। ये आलू उत्पादक गुजरात के साबरकांठा के वडाली गांव के हैं। अदालत ने अगली सुनवाई की तारीख चार जून तय की है और विवादित किस्म के आलू के उत्पादन और बिक्री पर रोक लगाई है। अदालत ने फील्ड विजिट के लिये एक कमिश्नर भी नियुक्त किया है। कंपनी ने किसानों के सामने अदालत से बाहर समझौता करने का प्रस्ताव भी रखा था, जिसमें कंपनी की शर्तों के अनुपालन के साथ ही एफसी-5 किस्म के आलू के लिये किसान कंपनी से ही बीज खरीदेंगे और केवल कंपनी को ही बेचेंगे, न कि खुले बाजार में। जिस पर किसान सहमत नजर नहीं आ रहे हैं।

निःसंदेह ये स्थितियां बहुराष्ट्रीय कंपनियों की मनमानी और कॉरपोरेट खेती के खतरों के प्रति आगाह करती हैं। दरअसल, एफएल 2027 किस्म का आलू अमेरिका में 2003 में विकसित किया गया था, जिसे भारत में एफसी-5 के नाम से जाना जाता है। इस आलू को चिप्स की प्रोसेसिंग के अनुकूल विकसित किया गया है। जिसके लिये पेप्सिको कंपनी किसानों के साथ कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग करती है। कंपनी खास व्यास के आलू ही खरीदती है। इसके पेटेंट की अवधि के बाद ही किसान बिना इजाजत व रॉयल्टी के इसके बीज को इस्तेमाल कर सकेंगे।

किसानों का आरोप है कि कंपनी आलू उत्पादन में एकछत्र राज स्थापित करने के लिये किसानों पर दबाव बनाने का काम कर रही है। इससे पहले भी वर्ष 2018 में गुजरात के अरवल्ली जिले के पांच किसानों के विरुद्ध भी बीस-बीस लाख के ऐसे मामले दर्ज किये गये थे। दरअसल, भोले-भाले किसानों को जब बीज दिये जाते हैं तो कंपनी की सभी शर्तों से अवगत नहीं कराया जाता।

बीज भी उन तक सीधे कंपनी के बजाय बिचौलियों के माध्यम से पहुंचते हैं और उन्हें कंपनी के करार की खामियां नहीं बतायी जातीं। एक तरह से किसान और उनकी जमीन कंपनी की बंधक बनकर रह जाती है। वे बताते हैं कि कंपनी के प्रतिनिधि बिना उनकी अनुमति के उनके खेतों का मुआयना करते हैं। किसान कहते हैं कि वे तो विभिन्न किसानों के बीच सूचना के आदान-प्रदान के चलते गुणवत्ता वाले बीजों के उपयोग की सदियों पुरानी परंपरा का ही अनुपालन करते हैं। उन्हें कंपनी के ब्रांड व अधिकारों की जानकारी भी नहीं थी। यानी कहीं न कहीं किसानों को बिचौलियों के द्वारा अंधेरे में रखा गया।

दरअसल, पेप्सिको ने इस बीज का भारत में पंजीकरण वर्ष 2016 में कराया था और ? इसकी संरक्षण अवधि वर्ष 2031 तक है। सरकार की तरफ से बहुराष्ट्रीय कंपनियों के कॉन्ट्रैक्ट फार्मिंग के नियम-कानूनों और बीज की जांच की पर्याप्त जानकारी किसानों को उपलब्ध करायी जानी चाहिए ताकि फिर वे किसी गफलत में न फंसे।

जीवन दर्शन

गुणवत्ता का रूप

कालिदास राजा विक्रमादित्य की राजसभा में नवरत्न थे। कालिदास कुरूप थे। एक दिन राजसभा में राजा ने देखा कि कालिदास के मुखमंडल पर पसीने की बूंदें झिलमिला रही थीं। विक्रमादित्य बहुत सुंदर थे। राजा ने कहा-कालिदास तुम वैसे ही कितने कुरूप हो, परन्तु पसीने से लथपथ होने से और भी कुरूप लग रहे हो। कालिदास को यह बात बहुत बुरी लगी। अगले दिन राजसभा लगने से पहले कालिदास ने दो घड़े एक स्वर्ण का और दूसरा मिट्टी का रखवा उनमें जल भरवा दिया। विक्रमादित्य को जब प्यास लगी तो कालिदास ने स्वर्ण पात्र से जल लेकर राजा को पिलाने का आदेश दिया। सोने के घड़े में रखा जल कुछ उष्ण हो गया था, जिसे विक्रमादित्य ने पीया तो उन्हें यह अरुचिकर लगा। राजा की भावभंगिमा देखकर कालिदास ने अब मिट्टी के घड़े से जल लेकर उन्हें पीने को दिया। उनकी मुखाकृति पर तृप्ति का भाव उभर आया। कालिदास ने धीरे से मुस्कुराते हुए कहा-देखा महाराज! रूप और सुंदरता किसी काम की नहीं है। सोने का घड़ा दिखने में चाहे जितना सुन्दर हो परन्तु शीतल जल केवल मिट्टी का घड़ा ही दे सकता है। विक्रमादित्य कालिदास का मंतव्य समझ चुके थे।

- सतप्रकाश सनोठिया

चींटियों की फौज में भी होता है प्रोमोशन

प्रणव प्रियदर्शी

बचपन में मेरे छोटे भाई की किसी जिद पर गुस्से में दादी ने उसकी तुलना चींटी से कर दी थी, बिल्कुल चींटी है यह, जहां से हटाओ घूम-फिर कर वहीं आ जाएगा। दादी के इस वाक्य ने मेरे मन में चींटियों के प्रति बड़ा कौतूहल पैदा किया। और मैं जब-तब चींटियों पर गौर करने लगा। हालांकि उस उम्र में ज्यादा कुछ पता नहीं कर सका। हां यह जरूर जान गया कि कभी कोई चींटी आराम करती हुई नहीं दिखती। कुछ खाती रहेगी या कहीं जा रही होगी या फिर कुछ ढो रही होगी। आते-जाते दूसरी चींटियों से टकराती भी है, लेकिन सबसे हलो-हाय नहीं करती। जो दोस्त-मित्र हुए उनसे दो बात जरूर कर लेती है, वह भी बिना रुके।

बचपन में चींटियों को लेकर बनी यह राय कमोबेश आज भी वैसी ही है, पर हाल में इनके बारे में कुछ दिलचस्प रिपोर्टें पढ़ने को मिली हैं। चींटियां सिर्फ मेहनत करना ही नहीं, मेहनत करवाना भी जानती हैं। इसके लिए उनके यहां पुरस्कार और दंड की व्यवस्था भी है। साइंस नामक पत्रिका में प्रकाशित एक रिसर्च में स्विट्जरलैंड की युनिवर्सिटी ऑफ लाउसैन के शोधकर्ताओं ने चींटियों की छह अलग-अलग कॉलोनियों को शामिल किया। अध्ययन की सुविधा के लिए ये कॉलोनियां लैब में ही तैयार की गई थीं। इसके बाद इन कॉलोनियों की एक-एक चींटी की निगरानी शुरू की गई। इसके लिए सारी चींटियों को अलग-अलग टैग करके इन पर बेहद छोटे-छोटे कैमरे लगाए गए, जो मेन कंप्यूटर से जुड़े थे। ये कैमरे हर सेकंड दो तस्वीरें भेज रहे थे। इस तरह 41 दिन इन सारी चींटियों को ऑब्जर्व किया गया। प्रयोग में शोधकर्ताओं के पास 2.4 अरब रीडिंग्स जमा हुईं। इन सबके विश्लेषण में लंबा समय लगेगा, लेकिन कुछ निष्कर्ष बिल्कुल स्पष्ट सामने आए और वे खासे चौंकाने वाले हैं।

तस्वीरों के विश्लेषण से पता चला कि अपनी कॉलोनी में चींटियों के बीच काम का बड़ा व्यवस्थित विभाजन होता है। वे सिर्फ मेहनत नहीं करतीं बल्कि अलग-अलग तरह से मेहनत करती हैं और उम्र तथा अनुभव के अनुरूप उनका काम बदलता रहता है। शोधकर्ताओं के मुताबिक 40 फीसदी चींटियां नर्स होती हैं जो अमूमन रानी चींटी और उसके अंडों के आसपास ही रहती हैं। अन्य 30 फीसदी चींटियां भोजन इकट्ठा करने का काम करती हैं। ये इधर-उधर घूमकर खाना लाती हैं और प्रायः कॉलोनी के प्रवेश (इंट्रेंस) के आसपास रहती हैं। बाकी बची चींटियां साफ-सफाई का काम देखती हैं। वही कॉलोनी में कूड़ों के ढेर की ओर जाती हैं और गंदगी दूर करती हैं।

इस सारे काम का विभाजन यों ही नहीं होता। इसका व्यवस्थित तरीका होता है। रिसर्च के मुताबिक चींटियां उम्र के हिसाब से जॉब बदलती हैं। सबसे कम उम्र की चींटियां नर्स का काम देखती हैं। जब उनकी थोड़ी उम्र हो जाती है तब उन्हें साफ-सफाई का काम सौंपा जाता है। बड़ी हो जाने के बाद उन्हें कॉलोनी से बाहर जाकर भोजन जुटाने का काम सौंपा जाता है। स्पष्ट है कि बाहर जाने में रिस्क है। इसलिए शरीर में ताकत आने और दुनियादारी की समझ होने के बाद ही उन्हें यह काम दिया जाता है।

मगर, शोधकर्ताओं ने पाया कि अलग-अलग कार्य समूहों में उम्र का ऐसा सख्त विभाजन नहीं था। अगर नर्सों में थोड़ी ज्यादा उम्र की चींटियां थीं तो सफाई के काम में कम उम्र की चींटियां भी लगी दिखीं। ऐसे ही भोजन जुटाने वाले समूह में अपेक्षाकृत कम उम्र की कुछ चींटियां भी दिख रही थीं। इसका मतलब संभवतः यह है कि प्रमोशन की व्यवस्था में उम्र एक पैमाना जरूर होता है, मगर यही एकमात्र पैमाना नहीं होता। काम को देखते हुए समय से पहले प्रमोशन मिल सकता है और काम अच्छा न हो तो उम्र हो जाने के बाद भी पुराने कैडर में ही रहना हो सकता है। इस अध्ययन के नतीजों को देख कर एक तरह का सुखद आश्चर्य भी हुआ, क्योंकि मधुमक्खियों के बारे में यह पहले से मालूम था। मगर चींटियों के यहां भी ऐसा होता है, इसकी जानकारी नहीं थी। इस अध्ययन के पहले कोई आधिकारिक जानकारी तो कतई नहीं थी। मगर, चींटियों की दुनिया में होने वाले श्रम के शोषण और इसके खिलाफ उनके यहां पनपने वाले गुस्से के नतीजों पर कुछ बेहद दिलचस्प जानकारी देने वाली एक और रिसर्च रिपोर्ट चार-पांच साल पहले आ चुकी है। इसकी जानकारी जर्मनी के जोहानेस गुटनबर्ग विश्वविद्यालय के प्रफेसर डॉ. सूसान फोइट्जिक ने 2009 में अपनी एक रिपोर्ट में दी थी। इसे उन्होंने गुलामी से विद्रोह की प्रवृत्ति (स्लेव रिबेलियन फिनॉमनन) कहा था। बाद की कुछ और स्टडीज में उनकी इन बातों की न केवल पुष्टि हुई, बल्कि यह भी मालूम हुआ कि यह प्रवृत्ति उनके बताए इलाके या प्रजाति तक सीमित नहीं है बल्कि अन्य इलाकों और प्रजातियों की चींटियों में भी यह पाई जाती है। रिपोर्ट में चींटियों की दो प्रजातियों का जिक्र किया गया है। टेमनोथोरैक्स लॉन्जिस्पिनोसस चींटियां छोटे आकार की होती हैं। इनसे थोड़े ही बड़े आकार और ताकत वाली होती हैं प्रोटोमैगनैथस चींटियां। बड़ी चींटियों के समूह छोटी चींटियों की कॉलोनी पर बाकायदा धावा बोलते हैं, वहां छोटी चींटियों को मार डालते है और उनके अंडों को अपनी कॉलोनी में ले आते हैं। अंडों से निकलने वाली इन चींटियों को गुलाम बना लिया जाता है। इन्हें न केवल भोजन जुटाना पड़ता है बल्कि कॉलोनी (जो अमूमन कोई बड़ा बीज या पेड़ की सूखी टहनी का कोई हिस्सा होता है) की साफ-सफाई के साथ-साथ अंडों की देखभाल का भी काम करना होता है।

इन चींटियों को अंडों की ही अवस्था में यहां लाया गया होता है, इसलिए वे अपनी प्रजाति के साथ तो रहे नहीं होते हैं। मगर, फिर भी इन बड़ी चींटियों के व्यवहार से इनमें गुस्सा पनपने लगता है। डॉ. सूसान फोइट्जिक और उनकी टीम के मुताबिक अंडों की देखभाल ये चींटियां शुरू में करती हैं, क्योंकि तब वे उन्हें पहचान नहीं पातीं। मगर, बाद में जब यह साफ हो जाता है कि ये तो गुलाम बनाने वाली प्रजाति की चींटियां हैं तो वे बाकायदा सामूहिक हमला करके बच्चों को मार डालती हैं। कुछ मामलों मे बच्चे इन चींटियों की लापरवाही से भी मरते हैं। लेकिन, इसका नतीजा यह होता है कि गुलाम बनाने वाली चींटियों की आबादी बढ़ने की रफ्तार बहुत कम होती है।

डॉयलॉग बॉक्स

जितनी ही अधिक शक्ति होगी उसका दुरूपयोग उतना ही अधिक भयावह (खतरनाक) होगा...

संवाद

आम पाठकों के लिए मंच प्रदान करने के उद्देश्य से अभिव्यक्ति का पन्ना आरक्षित है। आपकी पाती, समसमायिक घटनाओं पर विचार, लेख, राष्ट्रीय व अंतरराष्ट्रीय मसलों पर सुधि पाठकों का नजरिया पेश करने के लिए इसे रखा गया है।

लेखक केवल महानगरों नहीं बसते हैं। बस्तर भूमि में भी माटी से जुड़े विद्वानों की कमी नहीं है। हम चाहते हैं सभी को इस पन्ने में स्थान मिले और विचारों का आदान-प्रदान हो। यह संवाद आम पाठक और अखबार के बीच कायम रहे। विचारों से बस्तर में बदलाव आए, इन्हीं कामनाओं के साथ अभिव्यक्ति का यह अंक...

-संपादक

हमारा पता : संपादक

दैनिक बस्तर इम्पेक्ट, सिटी आफिस -

एच-85/A, मां दंतेश्वरी नगर, आवराभाटा दंतेवाड़ा, पिन -494449

फोन नंबर : 07856-252024

email - editor@bastarimpact.0rg